A-PDF Image To PDF Demo. Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

स्मारिका

विशेषाधिवेशन • १९७५ • प्रयाग

६, ७, ८ दिसम्बर १९७५

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

⊙

चित्रावली एवं शुभ-कामनाएँ

⊙

अनुक्रम

⊙⊙

हिन्दी का विकास-प्रसार सद्‌भाव से करते चलिए	माननीय श्री पंडित कमलापति त्रिपाठी	१
हिन्दी साहित्य सम्मेलन की जिम्मेदारी	प्रो० सैयद नूरुल हसन	५
तारक शक्ति प्रादेशिक भाषाओं की है	काका साहब कालेलकर	९
बृहत्तर भारत की सांस्कृतिक चेतना की भाषा हिन्दी	डॉ० कर्णसिंह	११
एक चुनौती	श्री कृष्णचन्द्र पंत	१४
हिन्दी-भाषियों का दायित्व	डॉ० शंकरदयाल शर्मा	१६
हिन्दी आन्दोलन अब अंतर्राष्ट्रीय बने	डॉ० श्रीमन्नारायण	१८
हिन्दी की गाड़ी बढ़-बढ़कर रुक जाती है	श्री शंकरदयाल सिंह	२१
विश्व हिन्दी सम्मेलन की उपलब्धियाँ	श्री अनंत गोपाल शेवड़े	२४
हिन्दी, हिन्दी-साहित्य और साहित्यकारों की समस्याएँ	श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	३३
हिन्दी के विकास में साधक-बाधक तत्व : एक आत्मालोचन	डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल	४८
सरकारी कामकाज में हिन्दी	श्री रमाप्रसन्न नायक	५४
विदेश मंत्रालय में हिन्दी	श्री बच्चू प्रसाद सिंह	६०
उच्च शिक्षा का माध्यम : हिन्दी	डॉ० नगेन्द्र	६५
हिन्दी और सांस्कृतिक एकता	डॉ० विनय मोहन शर्मा	६९
मध्ययुगीन भक्ति की चेतना	डॉ० हरवंशलाल शर्मा	७३

⊙⊙

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	श्री प्रभात शास्त्री	१
सम्मेलन संग्रहालय	श्री द्वारिका प्रसाद शास्त्री	९
हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति, साहित्य वाचस्पति और मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त विद्वान		१३
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : सांस्कृतिक संदर्भ	कुमारी कमलेश सक्सेना	१६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : राष्ट्रीय सन्दर्भ	श्री लक्ष्मीकांत वर्मा	२४
हिन्दी के राष्ट्रभाषा रूप संबंधी सम्मेलन के निश्चय	सम्मेलन, प्रचार विभाग	३०
विशेष अधिवेशन १९७५, प्रयाग के प्रस्ताव	सम्मेलन, प्रचार विभाग	३३
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : एक परिचय	सम्मेलन, प्रचार विभाग	३५
दृष्टिकोण आरंभ से ही राष्ट्रीय	श्री वियोगी हरि	४२
मेरी हिन्दी-यात्रा के कुछ प्रेरणादायी संस्मरण	श्री जेठालाल जोशी	४५
हिन्दी साहित्य सम्मेलन में गांधी जी	श्री ठाकुर श्रीनाथ सिंह	५५
सम्मेलन-समिति और लेखक	पं० रामेश्वर दयाल दुबे	५९
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : अतीत, वर्तमान और भविष्य	पं० सीताराम चतुर्वेदी	६३
हिन्दी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन	श्री नागेश्वर द्विवेदी	६६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन : कुछ संस्मरण	डॉ० प्रभाकर माचवे	६८
उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन : देहरादून अधिवेशन के संस्मरण	डॉ० सियाराम शरण शर्मा	७१
राष्ट्रभाषा हिन्दी	(गांधी वाणी)	७३

राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा	श्री बालशौरि रेड्डी	७५
राष्ट्रभाषा का प्रसार व प्रचार	श्री मोहनलाल भट्ट	७९
हिन्दी का प्रचार-प्रसार	डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	८४
हिन्दी का प्रचार-युग क्या समाप्त हुआ ?	डॉ० चन्द्रलाल दुबे	८६
'हिन्दी-साम्राज्यवाद' एक विकृत प्रचार	श्री गजेन्द्र सिंह सोलंकी	८९
हिन्दी का व्यापक व्यवहार	श्री हरिबाबू कंसल	९४
स्वतंत्रता के बाद हिन्दी	श्री बालेश्वर अग्रवाल	९९
स्वाधीनता से पहले राजभाषा हिन्दी	पं० रामदयाल पाण्डेय	१०१
दक्षिण भारत में हिन्दी कैसे व्याप्त हो	पं० गोपीकृष्ण व्यास	१०६
हिन्दी के लिए भगीरथ प्रयास आवश्यक	स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा	१०९
भाषा और प्रान्तीयता	श्री गुलाबदास ब्रोकर	१११
हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में दक्षिण की देन	प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी	११९
भारतीय भाषाएँ	डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया	१२६
हिन्दी भाषा के विकास की समस्याएँ और रचना-धर्मिता	डॉ० विजयेन्द्र स्नातक	१३४
नागपुर के विश्व हिन्दी सम्मेलन से प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन तक	डॉ० मस्तराम कपूर 'उर्मिल'	१४१
भारतीयों के लिए अंग्रेजी भाषा अस्वाभाविक	स्व० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी	१४९
हिन्दी के विस्तार की योजना	श्री विद्याभास्कर	१५१
अंतर-भारतीय जीवन-गंगा हिन्दी	डॉ० हिरण्मय	१५४
हिन्दी का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व	श्री अक्षयकुमार जैन	१५७
जयदेव और उनका रामगीतगोविन्दम् [राग काव्य]	श्री प्रभात शास्त्री	१६१
मारीशस में हिन्दी की स्थिति	श्री अभिमन्यु अनन्त	१७६
हिन्दी की कतिपय समस्याएँ	डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल	१८१
साहित्य और सामाजिक चेतना	डॉ० रत्नाकर पाण्डेय	१८४
साहित्य और जनता	पं० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	१९२
नारी लेखन : प्रश्नों की भीड़ में	डॉ० नीलिमा सिंह	१९५
कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग और हिन्दी	श्री रामकृष्ण त्रिवेदी	२०१
आज के हिन्दी-साहित्यकारों से	श्री शंकरदत्त ओझा	२०४
नयी आलोचना और आधुनिकता	डा० विजय शुक्ल	२०७
हिन्दी के लिए स्थायी योजनाओं की आवश्यकता	श्री हरिमोहन मालवीय	२११
साहित्य-संस्कृति-सभ्यता	श्री वाल्मीकि चौधरी	२१५
दक्षिण भारत में हिन्दी-शोध-कार्य	डॉ० राजकिशोर पाण्डेय	२१९

⊙⊙

आधुनिक बोध	डॉ० उर्वशी सूरती	१
समीक्षा और शोध : समस्या और समाधान	श्री राममूर्ति त्रिवेदी	३
शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना	श्री केसरी कुमार	१०
मानस की भाषा : काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण	डॉ० भगीरथ मिश्र	१३
हिन्दी की व्यापकता में दक्खिनी हिन्दी का योगदान	डॉ० परमानंद पांचाल	२८

नवीन रंगमंच के उपयुक्त नाटकों की आवश्यकता	डॉ० छविनाथ पाण्डेय	३३
राष्ट्रभाषा का ज्ञान-यज्ञ हिन्दी विश्वकोश	श्री सुधाकर पाण्डेय	३६
वर्णमाला	श्री सत्येन्द्र कुमार गुप्त	४३
शब्द ब्रह्म	डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम'	४५
अमीर खुसरो का शैली-समन्वय	डॉ० बालकृष्ण शर्मा 'अकिंचन'	४९
हिन्दी और नैपाली का भाषा-साहित्य	डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय	५३
दक्षिण में हिन्दी के लिए यह भी हो रहा है (हिन्दी की एक अनूठी संस्था का विवरण)	श्री कृष्णदत्त	५८
हिन्दी में तार सस्ते और अच्छे	श्री जगन्नाथ	६२
विदेश से हिन्दी का पहला पत्र हिन्दोस्थान	डॉ० राजेशचन्द्र मिश्र	६६
दिल्ली प्रशासन में हिन्दी की प्रगति	डॉ० नारायणदत्त पालीवाल	७०
प्रसिद्ध लेखकों की सस्ती ग्रन्थावली निकले	श्री मन्मथनाथ गुप्त	७४
जनतंत्र की माँग सरल भाषा	डॉ० गोपाल शर्मा	७८
रेडियो-साहित्य : एक स्वतंत्र विधा	श्री चिरंजीत	८३
विश्वविद्यालयों में हिन्दी-साहित्य का पाठ्यक्रम तथा अध्यापन	डॉ० नरेन्द्र कोहली	८९
तमाचों पर तमाचे, पर हम अंग्रेजी के ही गुलाम हैं?	श्री शिवकुमार गोयल	९६
जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ	श्री हरिदत्त शर्मा	९९
इंग्लैण्ड का साहित्य, भारतीय अध्यापक और संदर्भ से टूटा बेचारा छात्र	श्री दामोदर अग्रवाल	१०४
अब हिन्दी-विधि सम्मेलनों की आवश्यकता है	श्री रामकृष्ण शुक्ल	१०८
नये साहित्यकार : हिन्दी सेवी संस्थाओं का दायित्व	श्री गोविन्द मिश्र	११२
हिन्दी लोकोक्तियों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद	डॉ० परमात्मा शरण बंसल	११७
राजस्थानी काव्य की अर्द्ध-शताब्दी	डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'	१२५
मगही लोक-साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ	श्री राधाकान्त भारती	१४६
साहित्य, सरकार और आज के सन्दर्भ	डॉ० श्यामसिंह 'शशि'	१४९
मराठी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद	डॉ० मो० दि० पराड़कर	१५२
हिन्दी के विकास में सरकार तथा हिन्दी-सेवी संस्थाओं की भूमिका	श्री कृष्णस्वरूप	१५७
सामयिक साहित्य-चिंतन तथा लेखकीय समस्याएँ	सुश्री शोभा श्रीवास्तव	१५९
हिन्दी विश्व भर में फैलेगी	श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक'	१६२
तमिलनाडु और हिन्दी	डॉ० राजगोपालन	१६४
हिन्दी के भावबोध तथा उसकी व्यापकता	श्री रघुनाथ पुरोहित	१६६
हिन्दी की गति मन्द है	श्री गो० प० नेने	१७१
हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी की (अ)प्रतिष्ठा	श्री कामिल बुल्के	१७३
भाषा का सवाल और हमारा दृष्टिकोण	श्री विभूति मिश्र	१७५
भाषा का प्रश्न	मु० शेख अब्दुल्ला	१७७
अनुवाद : एक सुदृढ़ सांस्कृतिक सेतु	डॉ० जी० गोपीनाथन	१८०
हिन्दी भाषा का स्वरूप	डॉ० मंगलनाथ सिंह	१८३
केरल की हिन्दी सेवा	डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर	१८७
केंद्रीय सरकार का बजट हिन्दी में	डॉ० देवेशचन्द्र	१८९

शुभाशंसाएँ

⊙ ⊙

⊙ महामहिम श्री फखरुद्दीन अली अहमद

राष्ट्रपति, भारत गणतंत्र

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी के प्रचार और प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आया है, परन्तु अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है; ताकि हिन्दी सारे देश की लोकभाषा बन सके और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी स्वयंसेवी संस्थायें महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

सम्मेलन के लिये मैं अपनी शुभ-कामनाएँ भेजता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन भविष्य में भी हिन्दी-भाषा की सेवा पूरी लगन और निष्ठा से करता रहेगा।

⊙

⊙ महामहिम श्री बासप्पा दानप्पा जत्ती

उपराष्ट्रपति, भारत गणतंत्र

मुझे प्रसन्नता है, कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रतिष्ठा और विकास के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सराहनीय कार्य कर रहा है।

भाषा की समृद्धि के लिये आवश्यक है कि नवोदित साहित्यकार युग की आवश्यकताओं के अनुरूप साहित्य-सृजन में अपनी प्रतिभाओं को लक्षित करें। देश में आज एक नवचेतना जाग्रत हुई है, साहित्यकार इसके समग्र विस्तार में एक उपयोगी भूमिका का निर्वाह करें, ऐसी अपेक्षा की जाती है। इससे एक रचनात्मक साहित्य के निर्माण के लिए भी दिशा मिलेगी और राष्ट्र-निर्माण के महत् कार्य में सक्रिय सहयोग की भी पूर्ति होगी। आज के आर्थिक और सामाजिक पुनरुद्धार में साहित्यकार किस प्रकार अपने दायित्व का निर्वाह करें, इस बात पर सम्मेलन में उपयोगी सुझाव प्रस्तुत होंगे, ऐसा मेरा विचार है।

सम्मेलन के लिये मेरी शुभ-कामनाएँ।

⊙

⊙ श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण

विदेश मन्त्री, भारत सरकार

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सेवाएँ सर्वविदित हैं। इस संस्था की परम्परा बड़ी प्रतिष्ठापूर्ण रही है।

मेरा विश्वास है कि सम्मेलन अपनी उस गौरवपूर्ण परम्परा को कायम रखेगा तथा हिन्दी-साहित्य और भाषा के प्रचार-प्रसार में सदैव की भाँति अग्रणी रहेगा।

⊙

⊙ श्री प्रोफसर सैयद नूरुल हसन

शिक्षा मंत्री, भारत सरकार

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने न केवल समूचे देश में और विदेशों में हिन्दी का प्रचार किया है, बल्कि राष्ट्र-सेवा की उसकी अपनी एक परम्परा है। मुझे विश्वास है कि सम्मेलन से हिन्दी-प्रचार के कार्य को एक नई दिशा प्राप्त हो सकेगी और राष्ट्र-निर्माण का यह कार्य भावनात्मक संकीर्णताओं से उभर कर आम जनता को लाभान्वित कर सकेगा।

⊙

⊙ श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लों

परिवहन एवं जहाजरानी मंत्री, भारत सरकार

हिन्दी-जगत् में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का स्थान सर्वपरिचित है। हिन्दी-भाषा की उन्नति और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान सम्मेलन का रहा है।

सम्मेलन के लिये मेरी शुभ-कामनाएँ।

⊙

भारत में हिन्दी की महत्वपूर्ण भूमिका

⊙

मानीय श्री जगजीवनराम जी
कृषि एवं सिचाई मंत्री, भारत सरकार

जब तक किसी राष्ट्र के ऊपर बलात् एक विदेशी संस्कृति लाद न दी जाये, तब तक वह राष्ट्र किसी विदेशी भाषा के जरिए सफलता की कामना नहीं कर सकता। भाषा किसी राष्ट्र और जन-समूह की समग्र प्रक्रिया की चरम परिणति होती है। भारत के राष्ट्रपति ने १९६७ में ही यह भली-भाँति समझ लिया था कि एक स्वाधीन भारत में अगर लोकतन्त्र को प्रभावशाली बनाना है तो जनता को अपनी मातृभाषा के माध्यम से उनके अपने समुदाय के राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक कार्यकलाप में भाग लेने के लिए समर्थ बनाना होगा। शायद इसी कारण राजनीतिक पुनर्गठन आयोग की स्थापना होने और भाषावार राज्य बनाए जाने से काफी पहले ही काँग्रेस ने प्रदेशों का भाषागत विभाजन कर लिया था। इस सदी के आरम्भ में ही हमने आन्ध्र, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और उत्कल जैसे प्रादेशिक काँग्रेस संगठन बना दिए थे।

भारत के विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषाओं के विकास की इस अनिवार्यता के प्रसंग में ही गांधी जी ने एक राष्ट्रभाषा की कल्पना की थी और उनका विचार था कि यह राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती

है। दूसरी प्रादेशिक भाषाएँ अलग-अलग प्रशासनिक क्षेत्र की भाषाएँ थीं, किन्तु हिन्दी एक ऐसी भाषा थी जिसको इस प्रकार से किसी एक क्षेत्र में सीमित नहीं किया जा सकता था। यद्यपि इसका विकास खड़ी बोली से हुआ था, किन्तु इसका क्षेत्र व्यापक था और उस क्षेत्र में अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं--जैसे राजस्थानी, हिमाचली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि। लोग घर में इन बोलियों को बोलते थे और औपचारिक काम के लिए हिन्दी का व्यवहार करते थे। इस प्रकार हिन्दी इन सब क्षेत्रों की भाषा थी, किसी एकमात्र क्षेत्र की नहीं। यह एक बड़ी ही आसान भाषा थी और बहुसंख्यक भारतवासी इसे बोलते थे। बंगला, उड़िया, असमिया, मराठी, पंजाबी, गुजराती जैसी भाषाओं के साथ उसका सीधा भगिनी संबंध था और दूसरी भारतीय भाषाओं के साथ भी उसका अप्रत्यक्ष संबंध था। वस्तुतः हजारों छात्र दक्षिण से प्रतिवर्ष हिन्दी की परीक्षाओं में बैठते थे। जब संविधान में भाषा संबंधी कोई उपबंध नहीं किया गया था, उस समय ही वह राष्ट्रभाषा का काम कर रही थी।

दुर्भाग्य से भाषा का प्रश्न दूसरी अन्य समस्याओं के साथ जोड़ दिया गया और इस पर राजनीतिक प्रभाव थोप दिया गया; जिसका प्रतिफल यह हुआ कि जिस हिन्दी-भाषा को राष्ट्रपति एक जोड़नेवाली भाषा बनाना चाहते थे, वह कुछ समय के लिए छिन्न-भिन्न करने का एक तत्व बना दी गई। मुझे यह देखते हुए प्रसन्नता होती है कि त्रिभाषा-सूत्र अपना लिए जाने के बाद और राज्य-भाषा अधिनियम में संशोधन कर देने के बाद हिन्दी की भूमिका के बारे में जो कुछ गलत धारणाएँ बन गई थीं, वे अब दूर हो गई हैं। अब भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोग इस बात से आश्वस्त हो गए हैं कि उनकी इच्छा के बिना हिन्दी उनके ऊपर लादी नहीं जायेगी। पहले भी कभी किसी ने ऐसा नहीं सोचा था। कोई आज भी ऐसा कुछ नहीं सोचता है।

अगर विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ पूरी तरह विकसित हो जायें और राज्यों का काम उनके माध्यम से चलाया जाने लगे; अगर शिक्षा अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से दी जाने लगे, तो एक अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता सभी महसूस करने लगेंगे और तब निःसन्देह हिन्दी को स्वेच्छा से ग्रहण कर लिया जायेगा। हिन्दी का नाता सभी भारतीय भाषाओं के साथ जुड़ा है, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है और विभिन्न भारतीय भाषाओं को बोलने वाले लोग स्वयमेव उसे स्वेच्छा से सीख लेंगे। क्रमशः सभी सन्देह और अविश्वास दूर हो जायेंगे। इस बात को दृष्टि में रख कर त्रिभाषा-सूत्र बनाया गया था और अब उसे प्रायः पूरे देश में स्वीकार कर लिया गया है।

सभी राज्य सरकारों को अपनी-अपनी भाषाओं के विकास के लिए यथासम्भव पूरा-पूरा प्रयास करना होगा और इस बारे में केन्द्र का भी यह कर्तव्य है कि वह उनकी मदद करे। मेरा भी यही विचार है कि हिन्दी के अधिकतम विकास के लिए यथासम्भवपूरा-पूरा प्रयास किया जाना चाहिए और उसे सभी प्रादेशिक भाषाओं से शब्दावली उदारतापूर्वक ग्रहण करनी चाहिए, ताकि सभी भाषाओं को ऐसा लगे कि उन्होंने हिन्दी को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है। किन्तु सरकारी प्रयासों की अपनी सीमाएँ होती हैं। गैर-सरकारी संगठनों को भी महत्वपूर्ण योगदान देना होगा। सभी लोग हिन्दी-भाषा की समृद्धि में नागरी प्रचारिणी सभा के योगदान की सदैव सराहना करते रहते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन उन मनीषियों में थे, जिन्होंने हिन्दी को भारत की सार्वभौम भाषा बनाने का प्रयत्न आरम्भ किया था और हिन्दी साहित्य सम्मेलन को उसका माध्यम बनाया था।●●●

⊙ श्री टी० ए० पै

उद्योग एवं नागरिक पूर्ति मंत्री, भारत सरकार

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि हिन्दी की सर्वविश्रुत संस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पुनर्जागरणकारी अधिवेशन प्रसिद्ध विद्वान् पं० कमलापति त्रिपाठी की अध्यक्षता में आयोजित किया जा रहा है। आशा है कि इस अधिवेशन में हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग संबंधी विशिष्ट पक्षों पर विचार किया जाएगा तथा प्रभावी कदम निश्चित किए जायेंगे। मैं इस अधिवेशन की सफलता की कामना करता हूँ।

⊙

⊙ श्री राज बहादुर

पर्यटन तथा नागर विमानन मंत्री, भारत सरकार

हिन्दी की प्रतिष्ठा एवं प्रचार-प्रसार के लिये जिन संस्थाओं ने योगदान किया है, उनमें निःसंदेह हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से हिन्दी ने भारत की अन्य भाषाओं के साथ-साथ सभी दिशाओं में काफी प्रगति की है। अपना एक विशिष्ट स्वरूप एवं व्यक्तित्व विकसित किया है। परन्तु संसार की समृद्धतम आधुनिक भाषाओं की तुलना में उनकी विकास की स्थिति को पहुँचने में अभी उसे एक बड़ी मंजिल तय करनी है। ६० करोड़ भारतीय जनता और लघु भारत कहे जाने वाले मारीशस, फिज़ी, गुयाना, सूरीनाम आदि देशों की भारत मूलक आबादी की भाषायी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी हिन्दी पर है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी विश्व भाषाओं में स्थान प्राप्त करना देश के राजनैतिक गौरव की दृष्टि से एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिससे हिन्दी को पृथक् नहीं किया जा सकता। आशा है सम्मेलन हिन्दी के विकास एवं प्रचार से संबंधित इन सब पहलुओं पर एक व्यापक एवं गंभीर दृष्टि से विचार करेगा। मैं इसकी सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ भेजता हूँ।

⊙

⊙ सुश्री सरोजिनी महिषी

विधि, न्याय एवं कम्पनी कार्य राज्यमंत्री, भारत सरकार

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि देश की मूर्द्धन्य संस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन का विशेष अधिवेशन होने जा रहा है। मुझे जहाँ तक स्मरण है, यह सम्मेलन के अधिवेशनों में देश के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार विद्वान्, अध्यापक, राष्ट्रभाषा के कर्मठ सेवक और सारे देश के हिन्दी-प्रेमी भाग लेते रहे हैं। हमारे देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशेष भूमिका रही है। आज हमारा उद्देश्य भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान दिलाना है और इसमें भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन अग्रणी रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

व्यस्तता के कारण मैं आपकी स्मारिका के लिए विशेष लेख नहीं लिख रही हूँ। किन्तु मैं जानती हूँ कि अनेक हिंन्दी-सेवी-जन अपना सहयोग देकर आपकी स्मारिका को सफल और यशस्वी बनाएँगे।

इस अवसर पर मैं अधिवेशन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजती हूँ और अधिवेशन के सभी संस्थापकों और कार्यकर्ताओं का अभिवादन करती हूँ।

⊙

⊙ श्री बालगोविन्द वर्मा

श्रम उप-मंत्री, भारत सरकार

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है और उसके प्रचार-प्रसार के लिए जो महान् कार्य किये हैं, वे सदा चिरस्मरणीय रहेंगे। मुझे आशा है कि इस सम्मेलन में अन्य बातों के साथ-साथ हिन्दी को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने के प्रश्न पर भी विचार किया जायगा। मैं इसकी पूर्ण सफलता के लिए अपनी शुभ-कामनाएँ भेजता हूँ।

⊙

⊙ श्री ल० लिखितानन्द

चिमाण भाई विश्वविद्यालय, थाईलैण्ड

सम्मेलन सफल हो। मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

⊙

⊙ प्रोफेसर एन्जी तुर्राबियानी

इटली

राष्ट्रभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि के हेतु सम्मेलन आयोजित है—हर्ष। यह तो चाहिए कि जगत् के सब देशों में हिन्दी का प्रचार किया जाए। हम चाहते हैं, कि हिन्दी यथार्थ में भारत की राष्ट्रभाषा बन जाए। यह अनिवार्य ही है कि हिन्दी के व्याकरण, हिन्दी साहित्य के इतिहास, हिन्दी काव्यों तथा उपन्यासों के अनुवाद आदि छप जाएँ। सम्मेलन के लिए मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

⊙

⊙ श्री मंत्री

हिन्दी प्रचारिणी सभा, मारिशस

सम्मेलन के सभी कार्य-कलापों के साथ मेरा सहयोग एवं सहानुभूति है। मैं सम्मेलन की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ। हिन्दी की दिशा में सम्मेलन को देश-विदेश के लिए एक व्यापक एवं कारगर कार्यक्रम बनाना चाहिए।

⊙

⊙ **महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति**

श्रीदत्तोवामन पोतदार, पुणें

हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिक यशस्वी बने——यही कामना करता हूँ।

⊙

⊙ **पद्मभूषण**

श्री कालिन्दीचरण पाणिग्राही, कटक

राष्ट्रभाषा के विस्तृत प्रचार तथा प्रसार के लिए अपनी पुण्य मातृभूमि भारत के पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण समस्त प्रान्त के नगर-देहात के हरेक व्यक्ति को हिन्दी बोलना, पढ़ना और लिखना-जानना अत्यन्त आवश्यक है। ओड़िशा प्रान्त में हिन्दी-भाषा सर्वत्र सहज बोध्य है। निरक्षर ओड़िशावासी भी इस भाषा को समझते हैं। फिर भी कुछ अंचल में राष्ट्रभाषा का और अधिक प्रसार तथा प्रचार की आवश्यकता है।

⊙

⊙ **पद्मभूषण, साहित्यवाचस्पति**

श्री सूर्यनारायण व्यास, उज्जैन

यह विशेष अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुनरुत्थान एवं नव-जागरण का प्रतीक बने, और हिन्दी-भाषी जनता के जीवन का प्रतीक बने। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

⊙

⊙ **श्री तुषारकान्ति घोष**

कलकत्ता

अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति मेरे हृदय में अपार श्रद्धा है। शुभकामना के साथ ही सम्मेलन की सफलता की पूर्ण कामना करता हूँ।

⊙

सम्मेलन के प्राण-प्रतिष्ठापक

स्वर्गीय महामना मालवीय जी

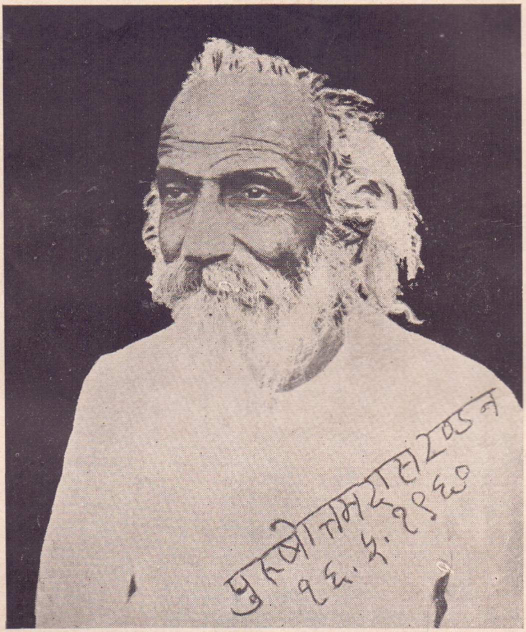

सम्मेलन के प्राण

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

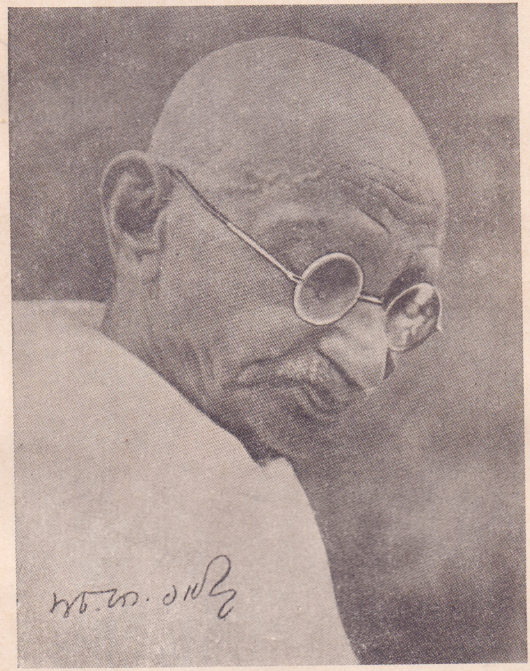

सम्मेलन के पूर्व सभापति

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

सम्मेलन विशेषाधिवेशन १९७५ के अवसर पर
साहित्य वाचस्पति का मानद उपाधि से सम्मानित
माननीय बाबू जगजीवनराम जी

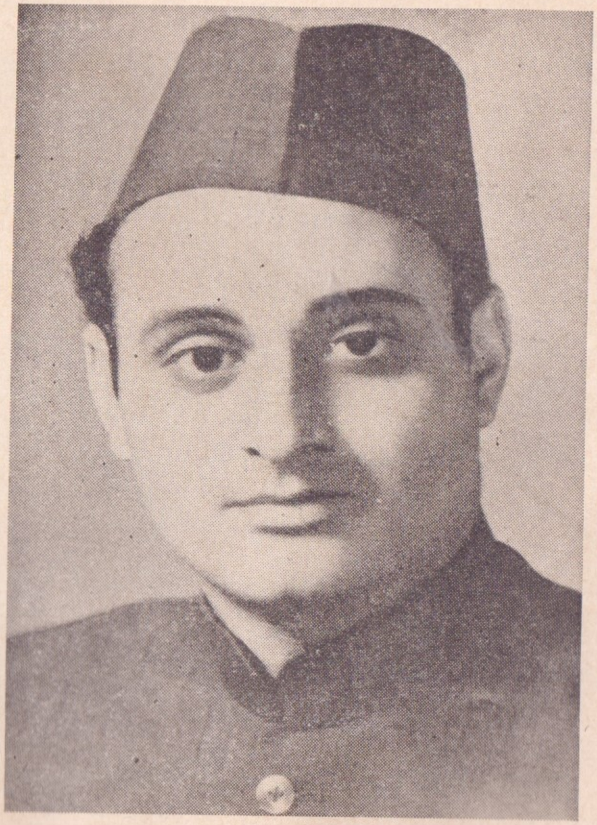

सम्मेलन विशेषाधिवेशन के उद्घाटक
माननीय डाक्टर कर्णसिंह जी

सम्मेलन के पूर्व सभापति

⊙

स्व० डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद
स्व० महापंडित राहुल सांकृत्यायन
स्व० श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर

सम्मेलन के वर्तमान सभापति
ठाकुर श्रीनाथ सिंह

विशेष-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष
श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा

सम्मेलन के वर्तमान प्रधानमंत्री
श्री प्रभात शास्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ज़िम्मेदारी

⊙

प्रो० सैयद नूरुल हसन

देश में हिन्दी की दो बड़ी संस्थाएँ हैं--एक नागरी प्रचारिणी सभा और दूसरी हिन्दी साहित्य सम्मेलन। नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी भाषा और साहित्य की तरक्की के लिए काम कर रही है और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नींव हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सन् १९१० में डाली गई थी। एक तरह से सम्मेलन की ज़िम्मेदारी हिन्दी को व्यवहार की ज़बान भी बनाना है। सम्मेलन ने पिछले ६५ सालों में जो काम किया है, उसे मैं हिन्दी के लिए एक बड़ा योगदान मानता हूँ और सम्मेलन को उन सब कामों के लिए बधाई देता हूँ। आज़ादी के बाद हिन्दी संस्थाओं की ज़िम्मेदारी बढ़ी है। यह ठीक है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद ३५१ के तहत हिन्दी के प्रसार की ज़िम्मेदारी केंद्रीय सरकार को सौंपी गई है और साथ ही साथ हिन्दी को भारत की मिली-जुली संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का काम भी केन्द्रीय सरकार ने अपने ऊपर लिया है, परन्तु यह सब काम गैर सरकारी संस्थाओं के सहयोग के बिना नहीं हो सकता। सन् १९१८ में सम्मेलन का सालाना जलसा इन्दौर में हुआ था और उसके सभापति महात्मा गांधी थे। उस जलसे में जो बातें तय हुई थीं, वे आज भी सही हैं। मिसाल के तौर पर, उस जलसे में हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्रलिपि के रूप में मंज़ूर करने की बात तय की गई थी। साथ ही

साथ यह भी तय किया गया था कि हिन्दी का प्रचार अहिन्दी भाषी प्रदेशों में प्रेम के द्वारा किया जाए और जहाँ तक मुमकिन हो अहिन्दी भाषी लोग भी अपने-अपने प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार और प्रसार करें। सम्मेलन के निर्णयों का अच्छा नतीजा निकला था। महात्मा गांधी ने अपने बेटे देवदास गांधी को इस काम के लिए मद्रास भेजा था और भारत सेवा संघ के ज़रिए इस काम को कराया गया। उस ज़माने में सभी अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए एक बड़ा जोश था और उन प्रदेशों के बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्रियों ने इस काम का बीड़ा उठाया था। तमिलनाडु और बंगाल में इस सिलसिले में जितना काम हुआ था, उतना शायद दूसरे प्रदेशों में नहीं हुआ था। सी० पी० रामास्वामी अय्यर, राजाजी, रंगस्वामी अय्यंगर, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी वगैरह इस काम में अगुआ थे। सारे देश में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए एक खासा वातावरण तैयार हो गया था और १९वीं सदी से ही जो एक अंग्रेज़ी ने अपना दौर-दौरा कायम किया था, उसकी मुख़ालफ़त होने लगी थी। शायद इसीलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद ३५१ में कहा गया है कि "हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक और वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

मैं देखता हूँ कि आजादी से पहले जो हिन्दी के प्रचार और प्रसार का वातावरण था, वह धीरे-धीरे बदलता गया। आज ज़रूरत इस बात की है कि सम्मेलन जैसी संस्थाओं के द्वारा वैसा वातावरण बनाया जाए। राष्ट्रभाषा किसी एक कौम, फ़िरके या प्रांत की नहीं होती, वह तो सारे देश की भाषा होती है और वह जीवंत भाषा होती है। सर मुहम्मद इकबाल ने अब्दुर्रब नश्तर के नाम एक खत में लिखा है कि "ज़बान को मैं बुत नहीं समझता जिसकी परस्तिश की जाए बल्कि इज़हारे मतलब का एक आसान ज़रिया समझता हूँ—ज़िन्दा ज़बान इन्सानी ख़यालात के इन्क़लाब के साथ बदलती रहती है और जब इसमें इन्क़लाब की सलाहियत नहीं रहती तो वह मुरदा हो जाती है।" इसका मतलब मैं इतना ही समझता हूँ कि हिन्दी में वह शक्ति आनी चाहिए जिससे वह सारे देश की व्यवहार की भाषा बन सके। हम उसे नाम कुछ भी दे सकते हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "हिन्दी अपनी शक्ति को बढ़ाए और आज भी जो हिन्दी बनी है, वह भी अपनी शक्ति के कारण बनी है। उसे जो राष्ट्रभाषा का पद मिला है, इसका कारण ही उसकी अपनी शक्ति है।" दरअसल देश की भाषाएँ और बोलियाँ ही हिन्दी की शक्ति है। संतों और सूफियों ने खड़ीबोली को सान पर चढ़ाया और बंगला, मराठी, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का खड़ीबोली पर प्रभाव पड़ा है। उर्दू तो खड़ीबोली का ही एक रूप है। यह सब कुछ

ही हिन्दी की शक्ति है। भारत की मिली-जुली संस्कृति का प्रतिबिम्ब हिन्दी में है। इसी कारण भारतीय संस्कृति की सहज अभिव्यक्ति उसके द्वारा हो सकती है। आज़ादी की लड़ाई में हमारी राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय आदर्शों को हिन्दी और दूसरी ज़बानों ने वाणी दी और इस काल में हिन्दी का जो रूप निखर कर सामने आया, वही सारे देश में फैला। हमारे नेताओं ने भी यह अनुभव किया कि हिन्दी ही देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है और सारे देश ने इस बात को मंजूर किया।

यदि कोई यह दावा करे कि एक प्रदेश में किए गए कार्य से अथवा कुछ इने-गिने साहित्यिक तथा हिन्दी-प्रेमी अगुआओं के प्रयत्नों से हिन्दी का वर्तमान रूप बना, वह समृद्ध हुई और उसको राजभाषा का गौरव प्राप्त हुआ तो यह ठीक उसी प्रकार की बात होगी जैसा कि भारत की किसी विशेष जाति का यह दावा करना कि भारतीय संस्कृति पर केवल उसी का अधिकार है क्योंकि इस संस्कृति को बनाने वाले प्रभाव या विचार किसी एक व्यक्ति या जाति की देन नहीं हैं। भारत में बसने वाली सभी जातियों की छाप उस पर पड़ी है और उसने इसको विशेष रूप देने में हाथ बँटाया है। पिछले हज़ारों वर्षों में मिस्र, फारस, यूनान, चीन, अरब, मध्य एशिया और भूमध्य सागर से तरह-तरह के लोग यहाँ पर आए। उनकी अलग-अलग भाषाएँ थीं। अलग-अलग भाव थे। अलग-अलग विचार थे। अलग-अलग रीति-रिवाज़ थे। अलग-अलग वेश-भूषा थी। अलग-अलग साहित्य था। अलग-अलग मनोरंजन थे। अलग-अलग देवी-देवता थे और अलग-अलग धर्म थे पर यहाँ की सांस्कृतिक एकता की खरल ने इन सब को घोट कर ऐसा रस तैयार किया जिसमें सुगन्ध तो सभी की थी, पर जिसका स्वरूप विशुद्ध भारतीय था। इस तरह सांस्कृतिक एकता के इस विराट् स्रोत में ये जातियाँ और नस्लें इस प्रकार हिल-मिल गईं और इसलिए यहाँ की संस्कृति जितनी आर्यों की है उतनी ही द्रविड़ों की और उतनी ही नीग्रो, यक्षों, नागों, शकों, हूणों, आभीरों, गूजरों; जाटों, पारसियों, पठानों, मुसलमानों और ईसाइयों की भी है। मानवता की हर एक धारा जो एकता के इस महासागर में आकर विलीन हुई, यहाँ की संस्कृति पर बराबर का दावा है और हर भारतवासी उसका समान उत्तराधिकारी है। इसलिए कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से असम तक, हर तरह की अनेकताओं के होते हुए भी देश की जनता में इस बुनियादी एकता के दर्शन पग-पग पर होते हैं और उसकी विविधताओं में से यह एकता फूट-फूट कर स्पष्ट निकलती सी जान पड़ती है। इसी प्रकार हिन्दी का विकास तथा प्रचार स्वाभाविक रूप से, सहजगति से समय की माँग को पूरा करने के लिए राष्ट्रव्यापी प्रेरणा से ही हुआ। १८वीं सदी से यह प्रारम्भ होकर आज तक हज़ारों-लाखों ऐसे हिन्दी के सेवकों ने इसके विकास में उसी तरह योग दिया है जैसा आम जनता ने सम्मेलन का कार्य चलाने के लिए पैसा फण्ड में एक-एक पैसा देकर उसको बढ़ाया था। और ऐसी अनेक संस्थाएँ भी होंगी, जिन्होंने हिन्दी की सेवा तथा श्रीवृद्धि का सफल प्रयास किया है, और हमने उनका नाम भी न सुना होगा। आज भी ऐसे अनेक सेवक तथा चुपचाप हिन्दी की सेवा करने वाली कितनी संस्थाएँ कार्य कर रही होंगी।

राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द से लेकर महात्मा गांधी तक यही सिलसिला

चला है। भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाएँ समृद्ध होने पर भी राष्ट्रभाषा बनने की सबसे अधिक क्षमता हिन्दी में ही है––इस बात को समूचे देश से स्वीकार कराने का बड़ा काम भी अहिन्दी प्रान्तों के विद्वानों और नेताओं ने ही किया है।

जिस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म हुआ वह हमारे देश में ब्रिटिश शासन-काल का स्वर्णिम युग था। हाँ, कहीं-कहीं स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता की लोरियाँ अवश्य सुनाई पड़ती थीं, किन्तु जन-भावनाओं को कोई उचित दिशा-निर्देश नहीं मिल रहा था। उत्साह और लगन की कोई कमी नहीं थी, कमी थी इन भावनाओं को मूर्त रूप देकर आगे आने वालों की। बंगला, गुजराती, मराठी तथा उर्दू के साहित्यसेवियों के सम्मेलन होने लगे थे किन्तु हिन्दी के साहित्यकारों का ऐसा अपना कोई संगठन नहीं बना था, जिसमें देश भर के हिन्दी के साहित्यकार, लेखक और प्रेमी जन एकत्र होकर सामूहिक रूप से कुछ विचार-विमर्श अथवा निश्चय कर सकते। इसी उद्देश्य से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

हमें यहाँ यह बात भी याद रखने की है कि हमारे सामने यह एक रचनात्मक और गतिशील समस्या है जिसको हम न तो सदा के लिए सुलझा सकते हैं और न ही हमें वैसी कोशिश करनी ही चाहिए। हम तो आज और निकट भविष्य की पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर ही इसका कोई संतोषजनक हल निकाल सकते हैं।

संभवतः इसी बात को ध्यान में रख कर महात्मा गांधी ने कहा था कि "मेरी कामना है कि मेरा घर न तो दीवारों से चारों ओर से बन्द कर दिया जाए और न ही ताजी हवा को रोकने के लिए उसकी खिड़कियों को ही मेड़ दिया जाए। मैं चाहता हूँ कि सारे संसार की महान् सभ्यताओं एवं संस्कृतियों की वायु मेरे घर की ओर बढ़े, किन्तु साथ ही मैं यह भी पूरी ईमानदारी से चाहता हूँ कि विदेश की सभ्यता-संस्कृति की आँधी से मेरा घर उड़ा ही न दिया जाए।"

इसलिए सम्मेलन के ऊपर आज बड़ी ज़िम्मेदारी है। साहित्यिक हिन्दी कालिजों और यूनिवर्सिटियों में चलाई जाती ही है। सवाल तो सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार की ज़रूरत है। यह काम सम्मेलन जैसी संस्थाओं को करना चाहिए। अभी यहाँ से अंग्रेजी-हिन्दी मानक कोष भी निकला, उसका मैं स्वागत करता हूँ। आपको अच्छे द्विभाषी-त्रिभाषी कोष निकालने चाहिए। अपनी परीक्षाओं में भी आपको अहिन्दी भाषी लोगों का ध्यान रखना होगा और ऐसे कोर्स बनाने होंगे जो व्यावहारिक हों और अहिन्दी भाषी उनमें रुचि ले सकें। मैं तो यह कहूँगा कि आपको हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में भी प्रयत्न करने चाहिए। विदेशों में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के तरीके सोचने होंगे। यह सब कुछ तभी हो सकता है जब हिन्दी के आलमबरदार आपस की राजनीति को छोड़ कर हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का साधन बनाएँ।

हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाना होगा जिससे उसके जरिए तकनीकी ज्ञान जनता तक, मजदूरों तक और कामगरों तक पहुँच सके। हिन्दी के साहित्य को इस प्रकार सत्य, शिव और सुन्दर से सजाना होगा कि उसकी तरफ सभी अहिन्दी भाषी खुद खिंचने पर मजबूर हों। मेरी शुभ कामना है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निबाह सके। ●●

'जय हिन्द, जय हिन्दी'

● महात्मा गांधी के सहयोगी श्री काका कालेलकर देश के गांधीवादी चिंतक, राष्ट्रभाषा हिन्दी को जनमानस में प्रचलित करने के निमित्त आपने अपना अप्रतिभ योगदान दिया है। विश्व-हिन्दी सम्मेलन, के मूल प्रेरक काका साहब के इस विचारशील लघु निबंध में प्रादेशिक भाषाओं को संपन्न करने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। मंगलप्रभात मासिक पत्र और अपने साहित्यिक कृतित्व से काका साहब का व्यक्तित्व राष्ट्र भारती के सपूत का ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। उनके विचारों का मनन करके ही हिंदी सर्वजन व्यापी हो सकती है। ●●●

तारक शक्ति प्रादेशिक भाषाओं की है

⊙

काका साहब कालेलकर

प्रादेशिक भाषाओं के विकास का और प्रचलन का समर्थन करना और प्रादेशिक भाषाओं की यथा-शक्ति सेवा करना हिन्दी के लिए हितकर है। प्रादेशिक भाषाओं के समर्थन और आशीर्वाद के द्वारा ही हिन्दी का बल बनता है और बढ़ता है। बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं के परस्पर सहयोग से ही हिन्दी राष्ट्रभाषा बनती है और भारत की राष्ट्रीयता मजबूत होती है।

हिन्दी एक समर्थ और संस्कारी भाषा है। लेकिन बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल तेलुगु आदि प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में हिन्दी का सामर्थ्य अधिक है ऐसा दावा आज तक न तो किसी ने किया है, न कोई कर सकता है। उच्च शिक्षा का माध्यम बनने की योग्यता भारत की सब प्रधान प्रादेशिक भाषाओं में एक सी है। जो स्थिति हिन्दी की हिन्दी के प्रदेश में है वही बंगाल में बंगला भाषा की है। शिक्षा को माध्यम के रूप में स्वभाषा का स्थान दूसरी कोई भाषा नहीं ले सकती। बंगाल का साहित्य समृद्ध है। उसका अध्ययन असम राज्य के लोग खुसी से करेंगे। किन्तु असमिया भाषा बोलने वाले लोगों के लिए उच्च शिक्षा का माध्यम असमिया ही होना चाहिये, न कि बंगला। भारत के विद्यार्थियों के

लिये अंग्रेजी भाषा का और अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान चाहे जितना जरूरी हो, बंगला, मराठी या तेलुगु आदि भाषाओं का माध्यम के रूप में स्थान न अंग्रेजी ले सकती है, न राष्ट्रभाषा हिन्दी। जिसका कारण एक ही है कि स्वभाषा की योग्यता माध्यम के रूप में किसी दूसरी भाषा में आ ही नहीं सकती।

माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषा को हटाकर हिन्दी अगर वह स्थान लेना चाहे, तो हिन्दी अपने प्रयत्न से अंग्रेजी का ही बल बढ़ायेगी। इस देश में अंग्रेजी ने अपना जो स्थान बनाया था वह सारा का सारा अगर हिन्दी मांग ले, तो अंग्रेजी का पाप भी हिन्दी को अपनाना होगा। हिन्दी का स्थान केन्द्रीय राज्य के द्वारा राज्यभाषा के तौर पर और अखिल भारतीय सांस्कृतिक सेवा के लिए राष्ट्रीय भाषा के तौर पर स्वाभाविक है। और हम गलतियां नहीं करें तो वह अजर-अमर है। लेकिन प्रादेशिक भाषाओं को उनके स्वाभाविक स्थान पर स्थानापन्न करने के लिये हिन्दी की मदद भी होनी चाहिए और उसकी प्रसन्नता भी होनी चाहिये। परितृप्त प्रान्तीय भाषाओं के सहयोग से और आशीर्वाद से हिन्दी का बल बढ़नेवाला है, घटनेवाला नहीं है। बंगाल में उच्च शिक्षा के लिये बंगला भाषा जो काम कर सकेगी, वह हिन्दी के द्वारा नहीं होगा। इसी तरह प्रयाग में उच्च शिक्षा के माध्यम का स्थान कभी भी बंगला या मराठी नहीं ले सकेगी।

राष्ट्रभाषा अथवा भाषा के रूप में हिन्दी को हम स्थापित करना चाहते हैं? उसके खिलाफ अंग्रेजी खड़ी हो सकी। लेकिन प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषाओं के खिलाफ खड़ी रहने की हिम्मत अंग्रेजी कभी नहीं कर सकेगी। और अंग्रेजी को हटाकर प्रान्तीय भाषाओं ने अगर एक गढ़ जीत लिया (जो प्रान्तीय भाषाओं के लिए सहज और स्वाभाविक है), तो अंग्रेजी की टांगें कमजोर हो जायेगी। और फिर प्रान्तीय भाषाओं और हिन्दी मिलकर अंग्रेजी को आसानी से हटा सकेंगी।

फिर तो अंग्रेजी भाषा इस देश में एक उपयोगी भाषा के रूप में रहेगी और उसका स्थान हमारे लिए ऐच्छिक रहेगा। काम काज सर्वत्र देशी भाषाओं में चले, शिक्षा के माध्यम के तौर पर प्रादेशिक भाषायें सेवा दें और देश के जीवन की चर्चा स्वदेशी भाषाओं में चले--इतनी स्वाभाविक और प्राणदायी नीति का अमल होने के बाद हम अंग्रेजी का पठन पाठन अवश्यमेव चलायेंगे। अंग्रेजी में साहित्य-निर्मित भी कर सकेंगे, क्योंकि भारतीय संस्कृति की खूबियां हम यूरोप-अमेरिका के सामने उसी भाषा में पेश कर सकेंगे। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का न हमें द्वेष है, न उसका बहिष्कार करना है। उपयोगी चीज को अपने स्थान पर इस देश में रहने का अधिकार हम जरूर देंगे। बुनियादी इकायी प्रादेशिक भाषाओं की है। ये प्रादेशिक भाषायें मिल कर राष्ट्रभाषा का मुकुट हिन्दी के सिर पर चढ़ायेंगी और उसे अपना बल प्रदान करेंगी। ●●

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में गांधी जी

⊙

श्री श्रीनाथ सिंह

● ठा० श्रीनाथ सिंह, वर्तमान अध्यक्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन एक त्यागी पत्रकार, कर्मठ एवम् विवेकशील सम्पादक रहे हैं। आपके सम्पादकत्व में सरस्वती जैसी पत्रिका का स्वर्ण-युग रहा है। अपने समय के नितान्त सक्रिय कांग्रेस सेवी, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराने के लिए निरन्तर कार्यरत रहने वाले व्यक्तियों में आप का नाम अग्रिम पंक्ति में रहा है। प्रस्तुत निबन्ध में श्री श्रीनाथ सिंह का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण संस्मरण, गांधी जी, टण्डन जी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विषय पर है। आशा है पाठक बीते हुए अतीत के उन मार्मिक क्षणों का साक्षात्कार करने में प्रसन्न होंगे।●●●

गांधीजी के निकट संपर्क में आने का सौभाग्य मुझे सन् १९३५ में प्राप्त हुआ, जब वह अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर-अधिवेशन के सभापति चुने गए और स्वयं उनकी प्रेरणा से मैं उस संस्था का प्रबन्ध-मंत्री नियुक्त हुआ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। उसी में सभापति के आसन से महात्मा गांधी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया, उसी में उन्होंने मद्रास में हिन्दी के प्रचार के लिए एक लाख रुपए की मांग की, जिसे स्वागत-समिति ने तत्काल पूरा कर दिया। उसके स्वागताध्यक्ष इन्दौर के महाराजा होल्कर थे, जब कि उससे पहले गांधीजी के स्वागत-सत्कार में कोई भारतीय नरेश आगे नहीं आता था। उन दिनों कांग्रेस के अधिवेशनों में जैसी भीड़ होती थी उससे भी बड़ा जन-समूह इंदौर के उस सम्मेलन में उमड़ आया था। राजसी ठाट-बाट के साथ विशाल पंडाल बनाया गया था, जिसमें लगभग पचास हजार नर-नारी गांधीजी के आने के पहले आसन ले चुके थे। विशिष्ट व्यक्तियों के लिए मंच पर बैठने की व्यवस्था थी। महाराज होल्कर, सेठ सर स्वरूपचन्द हुकुमचन्द, श्रीमती कमलाबाई कीबे स्वागत-समिति के

अन्य सदस्यों के साथ मंच पर विराजमान थे। सम्मेलन की कार्य-समिति का सदस्य होने के कारण मुझे भी मंच पर बैठने का अवसर मिला। होल्कर के राजपरिवार और इन्दौर की अन्य गण्यमान्य महिलाएँ अपने रंग-बिरंगे परिधानों में मंच और पंडाल के एक कक्ष में स्वर्ग से उतरी हुई परियों के समान पटी पड़ी थीं।

अब केवल गांधीजी के आने की प्रतीक्षा थी। एकाएक शहनाई और बैंड बज उठे। सामने से गांधीजी पंडाल में प्रवेश करते दिखाई पड़े। उनके साथ माता कस्तूरबा, महादेव भाई देसाई आदि उनके दल के लोग अमल-धवल खादी में सिद्धिप्राप्त तपस्वियों के समान आते दिखाई पड़े। जब गांधीजी मंच की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे तब महाराज होल्कर, जो अपने दरबारी वेश में अत्यंत शोभायमान हो रहे थे, उठे। कुछ आगे बढ़े, अपनी दोनों बाहों को गांधीजी की ओर फैलाया, थोड़े झुके, फिर ऐसा अभिनय किया जैसे गांधीजी के मार्ग में अपना रंगीन दुपट्टा बिछा रहे हों। और ज्यों-ज्यों गांधीजी आगे बढ़ते गए, महाराजा उसी प्रकार विनम्रतापूर्वक झुके हुए पीछे हटते गए और मूक इशारों से गांधीजी को उनके आसन तक ले गए।

गांधीजी के भव्य स्वागत का यह अभूतपूर्व नाटक आज भी मेरे मानसपटल पर उसी प्रकार अंकित है। जीवन में यह पहला अवसर था जब मैंने गांधीजी को इतने निकट से देखा था। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें, मंद मुस्कान, स्पष्ट अर्थभरी वाणी, बीच-बीच में अटूट हास्य वर्णनातीत था। उसके बाद विषय-समिति की बैठकों में उन्हें और भी निकट से देखने और राष्ट्रभाषा की रूपरेखा के सम्बन्ध में उनके विचार सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

विषय-समिति की आखिरी बैठक में सम्मेलन के पदाधिकारियों का चुनाव प्रारंभ हुआ। जो भी नाम सामने आता, गांधीजी उसे नापसंद कर देते। तब स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने मेरे नाम का प्रस्ताव व्यंग्य में कर दिया। गांधीजी ने मुझे देखना चाहा और मैं खड़ा किया गया। गांधीजी की वह मुखाकृति मुझे बड़ी डरावनी प्रतीत हुई। उनके चेहरे पर सदा खेलनेवाली मंद मुस्कान लुप्त थी। वह अत्यन्त गम्भीर हो उठे थे। मुझे लगा कि वह मुझे इस प्रकार देख रहे हैं जैसे कसाई बकरे को देखता है। गांधीजी के मुख से केवल इतना निकला, 'छोकरा ठीक जान पड़ता है।' फिर किसी को कोई नया नाम प्रस्तावित करने का साहस नहीं हुआ और मैं अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रबन्ध-मंत्री चुन लिया गया।

विषय-समिति की वह बैठक समाप्त होने पर राजर्षि टण्डनजी ने मुझे अपने पास बुलवाया और कहा— 'गांधीजी को मालूम नहीं है कि तुम बेतौल आदमी हो। खैर, अब तुम्हारे ऊपर बड़ी जिम्मेदारी आ गई है। जाओ, बगैर मुझसे पूछे कोई काम न करना।'

इलाहाबाद वापस आने पर मैंने प्रबन्ध मंत्री का पदभार सँभाला भी नहीं था कि गांधीजी का आदेश स्थायी समिति की पहली बैठक वर्धा में रखने के बारे में आ पहुँचा। मैंने तत्काल टण्डनजी को वह पत्र दिखाया और उनकी सलाह से तिथि निश्चित करके सबको सूचना भेज दी। निश्चित समय पर श्रद्धेय टण्डनजी और इलाहाबाद के अन्य सदस्यों के साथ जिनमें अधिकांश लेखक और कवि थे, मैं वर्धा के लिए रवाना हो गया। वर्धा पहुँचने पर हम सब बजाजवाड़ी में ठहराये गए।

सम्मेलन की नियमावली में संशोधन :

गांधी जी ने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन नागपुर में रखवाया। इसके अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद थे। इसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि राष्ट्रनेता उपस्थित थे। इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नियमावली में संशोधन किया गया। उसमें कहा गया कि हिन्दी वह भाषा है जो देवनागरी और फारसी, दोनों लिपियों में लिखी जाती है और जिसे देश में रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान सब समझते हैं। इस

प्रस्ताव का बहुत विरोध हुआ, पर गांधीजी की उपस्थिति के कारण यह पास हो गया। साथ ही, हिन्दी को व्यापक रूप देने के लिए उसकी लिपि, उसकी भाषा और उसके व्याकरण में भी सुधार के प्रस्ताव पास किए गए और उन प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए उपसमितियाँ बना दी गईं। लिपि-सुधार में शिरो-रेखा हटा देने, भाषा में उर्दू शब्दों को मान्यता देने और व्याकरण में अकारान्त शब्दों के पुंलिग और इकारान्त शब्दों को स्त्रीलिंग मान लेने की विशेषता थी। सम्मेलन के आगामी अधिवेशन में, जो मद्रास में हुआ, इन उपसमितियों की रिपोर्ट पेश हुई। उत्तर भारतीयों ने जो मद्रास में अल्पसंख्या में पहुँचे थे इन सभी प्रस्तावों का कड़ा विरोध किया, पर उनकी नहीं चली। सभी रिपोर्टें स्वीकार कर ली गईं और उनके अनुसार जोरों से कार्य प्रारंभ हो गया।

गांधीजी का विरोध :

इस समय प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें कायम हो गई थीं। उन पर भी जोर डाला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के क्षेत्र में गांधीजी का विरोध शुरू हुआ। यहाँ तक कि सम्मेलन के पूनावाले अधिवेशन में, प्रतिक्रियावादियों ने श्री नाथूराम विनायक गोडसे के नेतृत्व में इस विरोध को इस सीमा तक बढ़ाया कि नियमावली का पुनः संशोधन किया गया। उसमें हिन्दी की परिभाषावाली धारा से फारसी शब्द निकाल दिया गया। वह धारा अब इस प्रकार पढ़ी गई—'हिन्दी वह भाषा है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और जिसे देश के रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान सब समझते हैं। सम्मेलन की नियमावली में इस संशोधन को गांधीजी ने अपने जीवनादर्श के इतना विपरीत समझा कि सम्मेलन की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र स्वीकार होते ही उन्होंने वर्धा में हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा की स्थापना की। इस संस्था का काम उनके सन् ४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में गिरफ्तार हो जाने के कारण रुका रहा।

सन् ४४ में जब वह जेल से छूटकर आए तो वर्धा में हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा की बैठक बुलवाई। इसमें उन्होंने हिन्दी और उर्दू के हिमायतियों को विशेष रूप से आमंत्रित किया था। इस बैठक में मैं भी था। मुझे आज भी याद है। बैठक के प्रारंभ में ही गांधीजी ने कहा था—'मैं काले बैल चाहता हूँ।'

'काले बैल से आपका क्या तात्पर्य है?' बाबू सियारामशरण गुप्त ने गांधीजी से पूछा।

गांधीजी ने कहा—'मैं बूढ़ा हो गया हूँ। थका भी हूँ। मेरे पास न तो इतना समय ही है और न इतनी शक्ति ही है कि मैं सारे देश में घूम-घूमकर लोगों को अपने पक्ष में खड़ा करूँ। अतएव मैं चाहता हूँ कि जो लोग यह समझते हों कि गाँधीजी गलती नहीं करेंगे, वे अंध श्रद्धा के साथ मेरे पीछे चलें।

बाबू सियारामशरण गुप्त ने कहा—मैं काला बैल बनने को तैयार हूँ। और जब इस विषय में हाथ उठवाया गया तब श्री आनन्द कौसल्यायन को छोड़कर प्रायः सभी ने हाथ उठा दिए।

टंडनजी के बारे में गांधीजी की मनोव्यथा :

उस सभा की समाप्ति के बाद दूसरे दिन जब मैं चलने लगा, गांधीजी के पास उनका आशीर्वाद लेने गया। टण्डनजी इस सभा में शामिल नहीं हुए थे। पर उनका पत्र मैं गांधीजी के नाम ले आया था। गांधीजी ने कोई दो बजे रात उठकर ही उसका उत्तर लिखा था। कहा—'अब इसे डाक में न डालूँगा, तुम लेते जाओ।' वह पत्र को लिफाफे में बंद करते जाते थे और कहते जाते थे—'अगर टण्डन जी मेरी बात मान लेते?' शीघ्र ही उन्होंने सभा की दूसरी बैठक बुलवाई थी, उसमें टण्डनजी की उपस्थिति चाहते थे। मुझे आदेश दिया था कि मैं अनुनय-विनय करके टण्डनजी को उस दूसरी बैठक में अवश्य लिवा लाऊँ। गांधीजी का खयाल था कि टण्डनजी सामने आने पर उनकी बात मान जाएँगे।

इलाहाबाद आने पर मैंने गांधी जी की व्यथा टण्डनजी के सामने रखी। उनका पत्र भी उन्हें दिया। मेरी बात सुनकर और पत्र पढ़कर टण्डनजी बहुत गंभीर हो उठे। फिर बोले––'गांधीजी से कह देना, उनके काम आए तो मैं अपने शरीर का एक पाव मांस काटकर उनकी सेवा में भेज सकता हूँ पर आत्मा का हनन मुझसे न होगा।' टण्डनजी की बात सुनकर फिर मुझे कुछ और कहने का साहस न हुआ। हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा की प्रस्तावित बैठक में जब मैं भाग लेने पहुंचा, तब गांधीजी ने पहला प्रश्न किया––'टण्डनजी आए?' और मेरी ओर से नकारात्मक उत्तर पाकर बोले––'सारा हिन्दी संसार खिलाफ होता तो मैं परवा न करता, पर टण्डनजी का विरोध?' वह टण्डनजी को सम्मेलन का प्राण समझते थे, इसीलिए सम्मेलन से स्वयं निकल आए पर उसके अन्दर रहते हुए उन्होंने टण्डनजी से भिन्न राय रखना उचित न समझा। अपने विपक्षियों को वह बहुमत से नहीं, उनके हृदय-परिवर्तन से हराना चाहते थे।

गांधीजी चटपट काम चाहते थे। इसका एक उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ। इन्दौर के पश्चात् हिन्दी साहित्य का वार्षिक विवरण नागपुर में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक था। मैंने सम्मेलन के समस्त विभागीय मंत्रियों की सहायता से यह विवरण तैयार कर लिया था। निश्चय हुआ था कि मैं उसे टण्डनजी को दिखाकर छपवाऊँ। विवरण तैयार पड़ा था, पर टण्डनजी अति व्यस्त थे। वह टालमटोल कर रहे थे। उन्हीं दिनों गांधीजी प्रयाग पधारे। आनन्द-भवन में, जहाँ ठहरे थे, मुझे बुलवाया और पूछा––'रिपोर्ट छप गई?' मैंने न छपने का कारण बताया। उन्होंने कहा––'रिपोर्ट मेरे पास भिजवा दो। कल सुबह स्वयं आकर ले जाना।' मैंने वैसा ही किया। दूसरे दिन सुबह उनकी सेवा में उपस्थित हुआ तो वह रिपोर्ट मेरी ओर बढ़ाते हुए बोले––'रिपोर्ट मैंने देख ली है। इसमें जहां भी जितने विशेषण आए हों, निकालकर जल्द छपवा दो। मैंने देखा कि विशेषणों को निकाल देने से रिपोर्ट सुन्दर बन गई थी। आगे चलकर अपने लेखन और सम्पादन कार्यों में इसका सदैव ध्यान रखा और इससे मुझे हिन्दी लेखन की अपनी अच्छी शैली विकसित करने में बड़ी सुविधा हुई।

●●

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

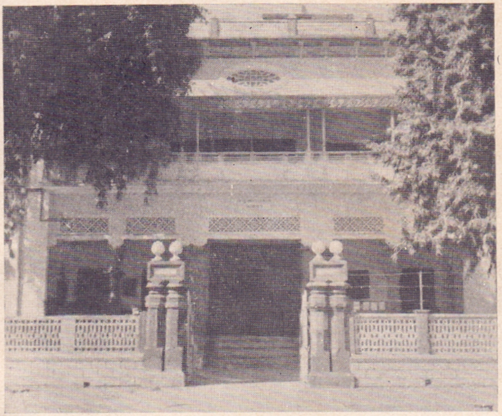

कार्यालय-भवन

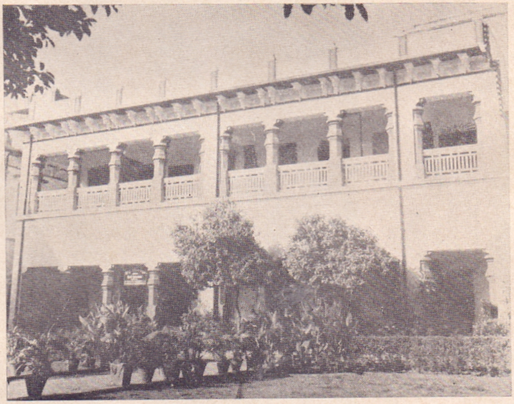

सत्यनारायण कुटीर (अतिथि-भवन)

●श्री क्षेमचन्द 'सुमन' साहित्य एकादमी में सक्रिय रूप से दशाब्दियों से सेवा कर रहे हैं। पुराने हिन्दी सेवी सुमन जी ललित कंठ कवि, निर्भीक हिन्दी सेवक, कथाकार, पत्रकार, उपन्यासकार, समीक्षक और शैलीकार संपादक हैं। सुमन जी ने अपने इस विस्तृत निबंध में गवेषणात्मक पद्धति पर दस-दस कोस पर बदलने वाली हिन्दी की विविध वाणियों का उल्लेख करते हुए संस्मरणात्मक और विचारात्मक शैली में सिद्ध किया है कि भाषा का विवाद राजनीतिक विवाद है और इस विवाद को समाप्त कर 'एक हृदय हो भारत जननी' के निमित्त एक भाषा और एक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम नागरी लिपि और हिन्दी भाषा ही हो सकती है।●●●

देश की एकता में हिन्दी का योग

⊙

श्री क्षेमचन्द 'सुमन'

किसी भी देश की एकता में उसकी भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो देखेंगे कि हमारे देश की एकता को बनाए रखने और उसकी अखण्डता को सुरक्षित करने में हिन्दी का अभूतपूर्व स्थान है। हिन्दी को यह महत्व इसलिए नहीं दिया गया कि वह सारी भारतीय भाषाओं में ऊँची है, बल्कि उसे 'राष्ट्रभाषा' इसलिए कहा और समझा जाता है कि हिन्दी को जानने, समझने और बोलने वाले इस देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। वे लोग चाहे हिन्दी विधिवत् न पढ़े हों, व्याकरण की भूलें हों, अशुद्ध हिन्दी बोलते हों; परन्तु बोलते हिन्दी हैं और उसी में अपने मनोभावों को व्यक्त करते एवं उसी के माध्यम से दूसरों की बात समझते हैं। वास्तव में हिन्दी की यह प्रकृति ही देश की एकता की परिचायक है और इसी प्रकृति ने उसे इतना व्यापक रूप दिया है। वह केवल हिन्दुओं या कुछ मुट्ठीभर लोगों की भाषा नहीं है; वह तो देश के कोटि-कोटि कण्ठों की पुकार और उनका हृदय-हार है।

हिन्दी के सूत्र के सहारे देश के एक कोने से चल कर कोई भी व्यक्ति दूसरे कोने तक जा सकता है और अपना काम चला सकता है। देश में फैली हुई अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के बीच यदि भारतीय जीवन की उदात्तता एवं एकात्मता किसी भाषा में दिखाई देती है तो वह हिन्दी में ही है। चाहे सब लोग हिन्दी न जानते हों, लेकिन फिर भी इसके द्वारा वे अपना काम चला लेते हैं और उन्हें इसमें कोई कठिनाई नहीं होती। भारत की

बहुभाषिकता के प्रश्न को उठाकर जो लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण स्थान पर अधिष्ठित करने में रुकावट डाल रहे हैं, वे यह कैसे भूल जाते हैं कि आज विश्व के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न देश रूस ने इस समस्या का किस प्रकार समाधान किया है। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि 'सोवियत संघ' में यद्यपि ६६ भाषाएँ बोली और लिखी जाती हैं, किन्तु फिर भी वहां की राष्ट्रभाषा 'रूसी' ही है। सोवियत संघ की 'मेपिल' और 'तुर्की' भाषाओं के शब्दों का रूसी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत यहां की दक्षिण की भाषाओं में संस्कृत के प्रायः ६० प्रतिशत शब्द मिल जाते हैं। तमिल को हम अपवाद के रूप में रख सकते हैं, किन्तु उसमें भी कुछ शब्द तो ऐसे मिल ही जाते हैं, जिन्हें भारत की दूसरी भाषाओं के बोलने वाले सरलता से समझ लेते हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व हिन्दी के ही माध्यम से भारत के अनेक सन्तों, सुधारकों, मनीषियों और नेताओं ने अपने विचारों का प्रचार एवं प्रसार किया था। अपनी दूरदर्शिता के कारण उन्होंने ऐसी ही भाषा को अपनी भाव-धारा के प्रचार का साधन बनाया, जो देश के सभी भूभागों के अधिकांश जन-समुदाय को एकता के सूत्र में पिरो सकती थी; और वह भाषा हिन्दी थी। यही कारण है कि जहाँ उत्तर प्रदेश के कबीर, पंजाब के नानक, सिन्ध के सचल सरमस्त, कश्मीर के लल्लधर, बंगाल के बाकुल, असम के शंकरदेव, गजरात के नरसी महेता, और महाराष्ट्र के तुकाराम एवं ज्ञानेश्वर आदि सन्तों ने जिस सांस्कृतिक एकता को आधार बना कर अपने काव्य की रचना की, वहाँ दक्षिण के वेमना और आलवार आदि सन्तों की कविता की मूल भावभूमि भी वही थी। इन सभी सन्तों के सन्देश में कहीं भी भाषागत विघटन का स्वर नहीं उभरा था, बल्कि सभी की रचनाएँ उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पच्छिम तक समान रूप से समादृत होती हैं। जिन साधु-वैरागियों के मठ और अखाड़े सारे देश में फैले हुए थे उनमें भी कहीं भाषा का झगड़ा नहीं उठता था।

भाषाओं की यह विविधता देश की एकता में कहीं भी बाधक नहीं समझी जानी चाहिए। **'दस बिगहा पर पानी बदलै, दस कोसन पर बानी'** के अनुसार 'पानी' और 'बानी' की अनेकविधता तो स्वाभाविक ही है। किन्तु कबीर ने जिस 'संस्कृत' को 'कूपजल' और जिस 'भाषा' को 'बहता नीर' कहा वह भाषा निश्चय ही 'हिन्दी' है। इसी भाषा में उन्होंने अपना सन्देश देश को दिया और उसे वे 'एकता की कड़ी' के रूप में देखते थे। भाषा वही महत्त्वपूर्ण होती है जो लोगों को 'तोड़ने' की बजाय 'जोड़ने' का सन्देश दे और जिसके माध्यम से प्रेम का मार्ग प्रशस्त होता हो। इसी पावन भावना से प्रेरित होकर महाकवि जायसी ने यह कहा था——

तुरकी, अरबी, हिन्दुई, भाषा जेतो आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम का, सबै सराहै ताहि॥

और यह प्रेम का मार्ग हिन्दी के माध्यम से ही प्रशस्त हो सकता है। यदि ऐसा न होता तो बंगाल के अद्वितीय सुधारक राजा राममोहन राय और केशवचन्द्र सेन——जैसे मनीषी अपने विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रचार के लिए हिन्दी को क्यों अपनाते? आर्य-समाज के स्वनामधन्य संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गुजराती होते हुए भी राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की अपनी भाव-धारा को हिन्दी के माध्यम से ही सारे देश में फैलाया। **'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है,** इस अमर मन्त्र के जन्मदाता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने महाराष्ट्रीय होते हुए भी १९२० में बनारस में हिन्दी में भाषण दिया था। उनके यह विचार वास्तव में हिन्दी की व्यापकता का सुपुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं——**"मेरी समझ में हिन्दी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए। जब एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से मिले तो आपस में विचार-विनिमय का माध्यम हिन्दी ही होनी चाहिए।"**

सामाजिक क्षेत्र में अनेक सुधारकों द्वारा जहाँ हिन्दी को भारत की एकता का प्रमुख साधन समझा जा रहा था वहाँ महात्मा गांधी के द्वारा उसके प्रचार और प्रसार को इतना व्यापक बल मिला कि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भी प्रस्तावों और भाषणों की भाषा हिन्दी हो गई। महात्मा गांधी जी ने हिन्दी की महत्ता इन शब्दों में स्वीकार किया था——**"जैसे अंग्रेज अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में ही बोलते हैं, वैसे ही मैं आप से प्रार्थना करता**

हूँ कि आप हिन्दी को भारत माता की एक भाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी को सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए।" हिन्दी को सार्वजनीन उपयोगिता और महत्ता का इसी से पता चलता है कि इसे दूसरे प्रदेशों के निवासी नेताओं और विचारकों ने अपने विचारों के प्रकटीकरण का माध्यम बनाया था। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए एक बार कहा था—"देश के सबसे ज्यादा हिस्से में हिन्दी ही लिखी जाती है। अगर हम साधारण बुद्धि से काम लें तब भी हमें पता चलेगा कि हमारी कौमी जबान हिन्दी ही सकती है।" सुप्रसिद्ध मनीषी आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भाषा को किसी भी देश की एकता का प्रधान साधन मानते हुए हिन्दी की महत्ता की जो प्रतिष्ठापना की थी वह भी अभिनन्दनीय है। उन्होंने कहा था—"अंग्रेजी भाषा की महिमा इसलिए नहीं है कि वह हमारे शासकों की भाषा थी, बल्कि इसलिए है कि उसने संसार की समस्त विद्याओं को आत्मसात किया है। हिन्दी को भी यही पद पाना है। उसे भी नाना विद्याओं, कलाओं और संस्कृतियों की त्रिवेणी बनना होगा। हिन्दी में वह क्षमता है। बिना ऐसा बने भाषा की साधना अधूरी रह जायगी। भाषा हमारे लिए साधन है, साध्य नहीं; मार्ग है, गन्तव्य नहीं; आधार है, ध्येय नहीं।"

आज राजनीति की आड़ लेकर जहाँ बंगाल में यदा-कदा हिन्दी-विरोध की जो आवाज उठ खड़ी होती है वहाँ के निवासी यह कैसे भूल जाते हैं कि अतीत काल में बंगाल ने हिन्दी के संवर्धन और पल्लवन में बड़ा भारी योगदान दिया था। बंगाल से जहाँ राजा राममोहनराय ने 'अग्रदूत' नामक पत्र हिन्दी में सफलतापूर्वक प्रकाशित किया, वहाँ 'वन्देमातरम्' राष्ट्र-गान के अमर गायक बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने 'बंग दर्शन' नामक ग्रन्थ के पाँचवें खण्ड में स्पष्ट रूप से यह लिखा था—"हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में बिखरे हुए लोग जो ऐक्य-बन्धन स्थापित कर सकेंगे वास्तव में वे ही सच्चे भारतीय कहलाने योग्य हैं।" केवल यही नहीं बंगला 'वसुमति' के सम्पादक श्री सुरेशचन्द्र समाजपति और 'सन्ध्या' के सम्पादक पं० ब्रह्मबन्धन उपाध्याय आदि ने भी अपने पत्रों में हिन्दी की राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी क्षमता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था। सुप्रसिद्ध तत्वचिन्तक योगिराज अरविन्द घोष ने भी अपने 'कर्मयोगी' और 'धर्म' नामक पत्रों के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन में अपना अनन्य सहयोग देने की भूमिका का कार्य किया था। जहाँ बंग देश में उक्त सुधारक, विचारक एवं तत्त्वचिन्तक हिन्दी-सम्बन्धी आन्दोलन को आगे बढ़ा रहे थे वहाँ श्री भूदेव मुखर्जी बिहार में तथा श्री नवीनचन्द्र राय बंगाल में हिन्दी -प्रचार का कार्य कर रहे थे। प्रकाशन तथा मुद्रण के क्षेत्र में भी बंग-भाषियों की सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। श्री रामानन्द चटर्जी ने अपने प्रवासी प्रेस से जहाँ 'विशाल भारत' जैसा उच्चकोटि का मासिक पत्र निकाला वहाँ श्री चिन्तामणि घोष के इण्डियन प्रेस ने 'सरस्वती' का प्रकाशन करके हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान किया था।

अनेक बंग नेताओं द्वारा जहाँ राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार की दिशा में ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हो रहे थे वहाँ जस्टिस शारदाचरण मित्र ने 'एकलिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना करके उसके द्वारा 'देवनागर' नामक ऐसा पत्र प्रकाशित किया कि जिसका उद्देश्य देवनागरी लिपि के माध्यम से समस्त भारतीय भाषाओं की कृतियों को हिन्दी में लाकर देश की समस्त भाषाओं में समन्वय स्थापित करना था। उनका यह भी अभिमत था कि यदि भाषाओं में से लिपि की दीवार हटा दी जाय और सब भाषाओं को 'देवनागरी लिपि' में ही लिखने की परम्परा चल पड़े तो भारत की एकता अक्षुण्ण एवं अखण्ड रह सकेगी। वास्तव में यदि लिपि की बाधा को दूर कर दिया जाय और सारे देश की भाषाएँ 'देवनागरी' लिपि को अपना लें तो हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक चेतना को बड़ा बल मिलेगा। पश्चिमी एशिया की 'ताजिक' और 'तुर्की' भाषाओं ने जब अरबी लिपि को छोड़कर रोमन लिपि को अपनाया तब वहाँ भी बड़े ही क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए थे। एक लिपि के माध्यम से हमारी एकता सर्वथा अक्षुण्ण रह सकेगी।

इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम उर्दू के हिमायतियों के उन तर्कों को ध्यान से देखें जो आज उर्दू को एक स्वतन्त्र भाषा का दर्जा देने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं, बल्कि वह तो हिन्दी की ही एक शैली मात्र है। यदि उर्दू के लिए देवनागरी लिपि का आश्रय ले लिया जाय तो उसका शैलीगत रूप बना रह सकेगा। उर्दू के हिमायती यह कैसे भूल जाते हैं कि जिस हिन्दी को जायसी, रहीम, रसखान, आलम, शेख और उस्मान जैसे कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया वह क्या केवल हिन्दुओं की ही भाषा कही जा सकती है? खड़ी बोली के आदि कवि के रूप में जहाँ अमीर खुसरो ने हिन्दी कविता को नये मुहावरे दिये, वहाँ सैयद इन्शा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' नामक रचना से हिन्दी कहानी की विधा में एक अभूतपूर्व निखार आया। हिन्दी साहित्य में जहाँ उक्त विभूतियों का अपना विशिष्ट स्थान है वहाँ आधुनिक काल में भी ऐसे अनेक नाम हमारे समक्ष उभरकर आते हैं, जिन्होंने जाति और धर्म की दीवार को लाँघकर साहित्य-निर्माण के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किया था। ऐसे महानुभावों में सैयद अमीर अली 'मीर', कासिम अली साहित्यालंकार, जहूरबख्श हिन्दी कोविद, बन्दे अली फात्मी, मुन्शी अजमेरी और नबीबख्श 'फ़लक' आदि के नाम गौरव के साथ स्मरण किये जा सकते हैं। कदाचित ऐसे ही उदारमना मनीषियों को दृष्टि में रखकर यह लिखा गया था—**"इन मुसलमान हरिजनन पर, कोटिन हिन्दू वारिये।"**

स्वतन्त्रता के बाद उर्दू भाषा के लिए आन्दोलन तो बहुत हुए, लेकिन वास्तविकता यह है कि प्रायः सभी उर्दू लेखकों ने अपनी रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित करानी प्रारम्भ कर दी हैं। यह शुभ चिन्ह है। उर्दू की अधिकांश शायरी भी देवनागरी में लिप्यंतरित होकर हिन्दी में आ गई है। ऐसी स्थिति में यदि भारत की एकता को दृष्टि में रखकर हम 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के साथ 'राष्ट्रलिपि देवनागरी' को अपनाने का संकल्प भी कर लें तो एक दिन समस्त भारतीय भाषाएं उन्मुक्त स्वर में यही उद्घोष करेंगी—

'एक हृदय हो भारत जननी!'

भाषा का विवाद राजनीतिक विवाद है, वह जनता का विवाद नहीं है। जनता को आज दिग्भ्रमित किया जा रहा है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम जनता को शिक्षित करें और उससे कहें कि वह अपना सारा कार-बार, पत्र-व्यवहार आदि हिन्दी में करे। यदि हमने शुद्ध मन से और दृढ़ निश्चयपूर्वक हिन्दी-प्रचार की पावन वेदी पर पैर रखा तो वह दिन दूर नहीं, जब देश के कोने-कोने से हिन्दी का स्वतः ही प्रचार हो जायगा।●●●